संगीत में अनुसंधानः समस्यायें और समाधन

पंडित विजय शंकर मिश्र
प्रख्यात लेखक एवं कलाकार
नई दिल्ली

जिज्ञासा– अर्थात् किसी नयी वस्तु या घटना आदि को देखकर उसके कारणों की खोज, उसके विशय में जानने की कोि ा ें, नकल– अर्थात् किसी अच्छी वस्तु या दृ यादि को देखकर उसकी नकल अथवा अनुकरण का प्रयास एवं अपनी जरुरतों तथा समस्याओं के समाधान के लिये लगातार नये उपायों की खोज करना– आदि जैसी क्रियायें– विवेक ील मनुश्य की जन्मजात प्रवृतियां हैं। और, इन्हीं प्रवृतियों ने बंदरो के वं ाज कहे जानेवाले आदि मानव को आज उस ऊंचाई पर स्थापित कर दिया है कि आज वह उन चांद–सितारो की दुनिया की सैर करने लगा है, जो कभी उसके लिये सिर्फ आ चर्य और पूजा आदि के विशय हुआ करते थे। ज़मीन पर चलनेवाले मानव ने आका ा और जल दोनों पर अपना आधिपत्य जमा लिया है जैसे।

फलों से लदे वृक्षों से फलों को ज़मीन पर गिरते हुए न जाने कितने लोगों ने देखा होगा?लेकिन, एक दीवाने के मन में पागलपन वाला यह प्र न कौंध उठा कि डाली से टूटने के बाद फल नीचे– धरती पर ही क्यों गिरा?ऊपर आका ा की ओर क्यों नहीं चला गया?अपने आप में यह एक अत्यन्त मूर्खतापूर्ण प्र न था– लेकिन, जिसके मन में यह मूर्खतापूर्ण प्र न कौंधा, वह अत्यन्त जिज्ञासु बालक था। उसके अंदर लगातार कुछ न कुछ जानने की इच्छा अंगड़ाई लेती रहती थी। इसीलिये उसने इस सरल से प्र न का गूढ़ उत्तर ढूंढ़ना भाुरु कर दिया..... और..... कुछ समय बाद दुनिया को गुरुत्वाकर्शण का महत्वपूर्ण सिद्धान्त दिया।नये अनुसंधानों के लिये यह दीवानगी, यह पागलपन बहुत जरुरी है।

आचार्य वृहस्पति से जुड़ी एक घटना का बयान मैं यहां करना चाहता हूं। एक बार एक लड़की उनके पास गई और बोली कि– 'मैं आपके निर्दे ान में संगीत में अनुसंधान कार्य करना चाहती हूं।'

आचार्य वृहस्पति ने पूछा– 'भूख अच्छी लगती है?'

लड़की ने जब हां में जवाब दिया तो आचार्य ने पूछा– 'और नींद?'

लड़की ने कहा– 'नींद भी खूब अच्छी आ आती है।'

तब, आचार्य वृहस्पति बोले– 'तब तुम संगीत में अनुसंधान कार्य नहीं कर पाओगी?अब, लड़की के चौकने की बारी थी। उसने पूछा– 'क्यों?क्यों नहीं कर सकती मैं?'

आचार्य वृहस्पति बोले– 'इसलिये कि संगीत में अनुसंधान कार्य करनेवालों के मन में इस काम के लिये एक बेचैनी होनी जरुरी है। जिस तरह खाना खाते समय हमारे दांतों में साग का कोई टुकड़ा जब फंस जाता है, तो हमारा ध्यान बार–बार उसी ओर जाता है, जीभ हर बार उसी ओर चली जाती है। इसी तरह संगीत में अनुसंधान कार्य करनेवालों के लिये जरुरी है कि उसका ध्यान हर समय उसी ओर रहे. ... उसकी भूख और नींद दोनों खत्म हो जायें।'

लेकिन, अब यह सोच बीते ज़माने की बातें हो गई हैं। अब तो कई अनुसंधानकर्ता सरस्वती के ऐसे अभि ाप्त पुत्रों की तला ा में रहते हैं, जिनसे लक्ष्मी कुपित रहती हैं, और वे बेचारे लाख–पचास हजार रुपये में किसी के लिये भी थीसिस या किताबें लिख दें। और वे सफल भी हो जाते हैं।

मनुश्य एक विवेक ील प्राणी है। और, उसका विवेक सदैव उसे नये कार्यों के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित करता है। सृश्टि के आरंभ से ही इंसान आका ा में पक्षियों को विचरण करते हुआ देखता रहा है। सबको मालूम है कि पक्षी नभचर हैं। आका ा में उड़ना उनका काम ही है। वे हमारी और आपकी तरह न तो धरती पर चल सकते हैं, और न तो मछली की तरह पानी में तैर सकते हैं। इसलिये किसी ने भी उस ओर वि ोश ध्यान नहीं दिया। लेकिन, एक दीवाने के मन में यह प्र न कौंधा कि आखिर! पक्षियों में ऐसी कौन सी वि ोश बात है कि वे आका ा में उड़ पाते हैं?उसने इस दि ाा में अनुसंधान कार्य भाुरु किया, और तरह–तरह की कई कोि ा ाों के बाद अपने भाई के साथ मिलकर वायुयान बनाने में सफलता प्राप्त की। हम उन्हें राइट ब्रदर्स के नाम से जानते हैं। इसी तरह से थोमस एडिसन ने बल्ब का निर्माण कर लिया, क्योंकि वे रो ानी के लिये कोई अच्छा विकल्प चाहते थे, तो अलेक्जेंडर ग्राहमबेल ने टेलीफोन का।

यह क्या है?ऐसा क्यों है?इसके पीछे कारण कौन से हैं– ये ही प्र न अनुसंधान के आधार हैं। और, इसी अनुसंधान की प्रवृति के कारण इंसान सृश्टि के विकास की कहानी को सोने की स्याही से लगातार लिख रहा है। उसने सिर्फ वायुयानही नहीं, जलयान भी बना लिया है। सृश्टि के, प्रकृति के किसी भी रहस्य को वह अपने लिये अबूझ और अनजाना नहीं छोड़ना चाहता है।

अनुसंधान की यह प्रक्रिया संगीत– नृत्य के क्षेत्र में भी बदस्तूर लगातार जारी है। संगीत एक तरह से नादानुसंधान ही तो है! संगीत के माध्यम से हम नाद की ही तो साधना, आराधना और अवतारणा करते हैं! मैं अपनी बात आगे बढ़ाऊं– उसके पहले एक बार फिर– अपना एक पुराना बयान दोहराना चाहता हूं– जिस पर कई लोगों को आपत्ति भी है– भाास्त्र हमे ा कला का अनुगामी होता है।

अब यहां बात कुछ विरोधाभाशी हो जाती है। क्योंकि, अनुसंधान सदैव भाास्त्र–सम्मत, भाास्त्राधारित होता है। और, संगीत के लिये मैं कह रहा हूं कि यहां भाास्त्र कला का अनुगामी होता है। अतः इसे स्वीकारने में बहुत सारे लोगों को आपत्ति हो सकती है। लेकिन, मेरा व्यक्तिगत अनुभव तो यही कहता है। मुझे नहीं याद पड़ता है कि संगीत के कला या प्रायोगिक पक्ष का कोई भी सृजन कार्य पुस्तकों या ग्रंथों को सामने रखकर किया गया हो। बल्कि होता यह रहा है कि पहले वह सृजन कार्य संपन्न हो गया और तब उसके ऊपर विचार–विम र्श हुआ। जैसे एक बच्चे का जन्म होता है..... उसके जन्म के बाद लोग अनुभव करते हैं कि इसकी आंखे इसके पिता की तरह हैं होठ मां की तरह.... और नाक दादाजी की तरह।

मेरे एक दक्षिण भारतीय मित्र हैं। वर्षों पूर्व जब वे उत्तर भारत में आये थे, तो यहां उन्हें सूजी का हलुवा खाने को मिला जो उन्हें बहुत पसंद आया और वे उसे रोज ही खाने लगे। लेकिन, कुछ समय बाद जब वे दक्षिण भारत में अपने घर पहुंचे तो लोगों ने उन्हें सूजी का हलुवा खाने से इसलिये मना किया कि चिकित्सकों ने उन्हें चीनी से परहेज बताया था। तब उन्होंने एक रास्ता निकाला..... उस हलुवा में उन्होंने चीनी की जगह हल्का नमक डाला और पाया कि यह भी कम स्वादिश्ट नहीं है। बाद में उन्होंने उसमें एक प्रयोग और किया और उसमें मूंगफली और कढ़ी पत्ते भी डालने लगे। फिर, उसका एक नामकरण भी कर दिया गया। और, इस तरह उपमा नाम से एक नया और स्वादिष्ट व्यंजन आज न केवल दक्षिण भारत बल्कि उत्तर भारत में भी खूब लोकप्रिय है। मैं जब सूजी के हलवा और उपमा दोनों को एक साथ याद करता हूं तो मुझे राग दरबारी कान्हड़ा और अड़ाना याद आ जाते हैं.... एक पूर्वांग प्रधान है तो दूसरा उत्तरांग प्रधान।

इंसान ध्वनि– अर्थात् कंठ स्वर लेकर पैदा हुआ था। भले ही भाषा का, व्याकरण का और संगीत का आविष्कार उसने बाद में किया। किंतु ईश्वर प्रदत्त ध्वनि उसके कंठ में नैसर्गिक रुप से मौजूद थी। और, उसी के उतार–चढ़ाव से उसने संगीत की दिशा में अपना पहला कदम उठाया। फिर, उन ध्वनियों के अलग–अलग स्थानों.... स्तरों..... च्ज्ब्म्को अलग–अलग नाम दिया होगा संगीत मनीषियों ने। पहले उदात्त, अनुदात्त और स्वरित– ये तीन मूल स्वर निर्धारित हुए होंगे। फिर, अपने अनुसंधान के आधार पर संगीत मनीषियों ने पाया कि– इन तीन मूल स्वरों के अंदर 4 अन्य स्वर भी समाहित हैं। इस तरह कुल सात शुद्ध स्वरों का प्रकटीकरण करते हुए– षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद का नाम उन्हें दिया गया। अनुसंधान की प्रक्रिया चलती रही और संगीत के अनुसंधानकर्ताओं ने पांच– विकृत स्वरों को भी इन्हीं सात स्वरों में से ढूंढ निकाला। हॉलांकि, विकृत स्वरों की संख्या को लेकर प्राचीन विद्वानों में कुछ मतभेद रहें हैं। लेकिन, आधुनिक विज्ञान इनकी संख्या 5 मानने पर एकमत हैं।

स्थूल रुप से कहें तो एक से दूसरे घंटे की अवधि में सिर्फ एक घंटे का अंतराल होता है। फिर, पता चलता है कि इस एक घंटे के बीच 60 मिनट होते है, और हर मिनट के बीच साठ सेकेंड्स भी होते हैं, और..... अब तो सेकेंड्स के सौवें हिस्से को मापने वाले अत्याधुनिक उपकरण भी आ गये हैं। काल तो प्राकृतिक है, किंतु विभिन्न अवयवों में उसका विभाजन और उसे मापने की विभिन्न क्रियायें अनुसंधानिक हैं।

गायन की बातें करें तो कंठ स्वर तो हमें ईश्वर ने दिया ही था। लेकिन, उससे रोने–चिल्लाने, हंसने और गाने की कला को– हमने खुद–अनुसंधान कर करके विकसित किया है। इतना ही नहीं, अलग–अलग गायन शौलियों और रचनाओं में कंठ स्वर का प्रयोग अलग–अलग कैसे हो?काकु का प्रयोग किस तरह से हो? यह सब अनुसंधान के आधार पर ही तो हुआ है। प्रसिद्ध भजन गायक श्री अनूप जलोटा जब अपने एक प्रसिद्ध भजन में गाते हैं– 'मैया मोरी..... मैं नहीं माखन– खायो।' और गाते–गाते– बाद में वे जब अचानक गा उठते हैं– 'सुन मैया मोरी..... मैं ने ही माखन खायो.....' तो गीत के शब्दों में हल्के बदलाव के साथ ही कंठ स्वर के भाव भी बदल जाते हैं, और अर्थ तो पूरी तरह से बदल ही जाते हैं। यह भी एक अनुसंधान कार्य ही है कि अपने कंठ स्वर से किस तरह भिन्न–भिन्न भावों और रसों की निष्पत्ति की जाये। लेकिन, इसकी शिक्षा के लिये अच्छे गुरुओं के श्रीचरणों में बैठना होगा।

इसी तरह से एक ही राग के अलग–अलग भाव वाली रचनाओं को गाने के लिये भी कंठ स्वरों का भावानुकूल प्रयोग करना चाहिये। जैसे राग दरबारी कान्हड़ा में– विलंबित खयाल– किन बैरन कान भरयो? को गाते समय, मध्य लय में, ठुमरीनुमा खयाल– घर जाने दे छांड मोरी बैंया को गाते समय और ग़ज़ल– हंगामा है क्यों बरपा थोड़ी सी जो पी ली है– तथा– फिल्मी गीत– आंसू भरी है ये जीवन की राहें कोई उनसे कह दो हमें भूल जायें– को गाते समय गायक अगर कंठ स्वर के भावों और काकु का समुचित प्रयोग करें तो प्रस्तुति की गुणवत्ता कई गुणा बढ़ जाये। लेकिन, यह अत्यन्त दुखद है कि हमारे अधिकांश शास्त्रीय संगीतज्ञों ने गायन में शब्दों को महत्व देने की जिम्मेदारी सुगम संगीत के गायकों को सौंपकर स्वयं निश्चिंत हो गये हैं। वे सिर्फ राग और तकनीक गाते हैं। वे यह तक सोचने का कष्ट नहीं करते हैं कि किस तरह के राग में, किस तरह के साहित्य के साथ किस तरह के तानों का कितना प्रयोग होना चाहिये?संगीत में साहित्य के महत्व को संगीत मार्त्तंड पं. ओंकारनाथ ठाकुर, रसराज पं. जसराज और पद्मभूषण पं. राजन मिश्र और पं. साजन मिश्र आदि के गानों से समझा जा सकता है।

अनुसंधान का महत्व जीवन के हर क्षेत्र में है। लेकिन, यह थोड़ी सतर्कता और समझदारी की मांग करता है। बस! मेरे पड़ोस में दो बच्चे हैं.... सगे भाई। शक्ल–सूरत आदतें– सब कुछ एक दूसरे से

मिलती–जुलती। इसलिये, अक्सर लोग पहचानने में भूल कर जाते थे। लेकिन, घर वालों ने जब खूब ध्यान से देखा तो पाया कि नहीं! सब कुछ एक जैसा नहीं है। कुछ–कुछ अंतर हैं दोनों में। और, अब उस अंतर के आधार पर लगभग सभी लोग उन दोनों को अलग–अलग पहचान लेते हैं। आप भी जब उनसे मिलेंगे तो थोड़ा सा ध्यान देते ही पहचान लेंगे कि यह भूपाली है और यह देशकार। यह 'ध्यान' ही अनुसंधान है। इसी तरह, पूरिया, मारवा और सोहनी जैसी स्थूल दृष्टि से बिल्कुल एक जैसी दिखनेवाली तीनों सगी बहनें भी आंतरिक दृष्टि से बिल्कुल भिन्न हैं।

थोड़ी चर्चा वाद्य यंत्रों की भी कर लेते हैं। अधिकांश वाद्यों के निर्माण गायन की संगति और उनमें समुचित रंग भरने के उद्देश्य से ही हुए हैं। अतः उनमें सुधार और अनुसंधान की प्रक्रिया लगातार चलती रही है। जैसे प्राचीन काल में वीणाओं में सारिकायें नहीं होती थीं, लेकिन बाद में उनमें सुविधा की दृष्टि से सारिकायें (पटरियां, रीड्स) जोड़ी गई, और आज– बहुत कम ऐसे तंत्र वाद्य हैं..... जिनमें सारिकायें नहीं हैं। अनुसंधान के आधार पर ही रुद्रवीणा के आधार पर पहले सुरबहार और फिर सितार जैसे साज अस्तित्व में आये। लेकिन, अनुसंधान की प्रक्रिया यहीं नहीं रुकी। अलग–अलग कलाकारों ने अपने वादन की दृष्टि से अपने साजों में अनेक अनुसंधानात्मक बदलाव किये। पं. रविशंकर और उस्ताद विलायत खां की वादन शैली ही नहीं, साजों की बनावट में भी जमीन– आसमान का अंतर था। यही अंतर उस्ताद अलाउद्दीन खां और उस्ताद हाफिज अली खां के सरोद में भी था।

पुष्कर वाद्यों के ढांचे पहले मिट्टी के बनते थे। इसीलिये उन्हें मृदंग कहा गया। फिर, टूटने से बचाने के लिये उसके एक भाग– पखावज का ढ़ांचा लोहे का बनने लगा। लेकिन, आवाज में कमी रह गई तो लकड़ी का ढ़ांचा बनने लगा। ये सारी क्रियायें भी अनुसंधानात्मक ही थी। इतना ही नहीं, अनुसंधान इस पर भी हुआ कि किस साज के लिये कौन सी लकड़ी अधिक उपयुक्त है?जैसे– तबले और पखावज आदि के लिये विजयशाल, खैर, शीसम आदि की लकड़ियां अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं तो संतूर के लिये टीक की लकड़ी।

अनुसंधान के कारण ही कश्मीर के सूफियाना संगीत के साथ बजनेवाला, कश्मीर की हसीन वादियों में ही सिमटा रहा अत्यन्त सीमित क्षमताओं वाला साज संतूर– आज– अपनी असीमित क्षमताओं के साथ अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अपनी कीर्ति पताका फहरा रहा है। डेढ़ सप्तक तक बजनेवाला यह साज आज साढ़े तीन सप्तक तक बोल रहा है। खेतों, खलिहानों में बजनेवाला लोकवाद्य बांसुरी– आज शास्त्रीय संगीत के मंचों की शोभा बढ़ा रहा है। तो, पाश्चात्य संगीत का एक साधारण सा साज– स्लाइड गिटार– मोहन वीणा के नाम से देश–विदेश में धूम मचा रहा है।

अनुसंधान की बातें और भी की जा सकती है। जैसे ईश्वर ने हमें सिर्फ आवाज दी थी, लेकिन उस आवाज को गानोपयोगी, संगीतोपयोगी कैसे बनाया जाये?उसका कैसे प्रयोग किया जाये?अपेक्षाकृत कम अच्छी आवाज को भी अधिक अच्छी आवाज में कैसे परिवर्तित किया जाये?इन सभी गूढ़ विषयों पर संगीत मनीषियों ने गहन–चिंतन–मनन करके कई नयी तकनीक विकास की– अ व प ब म बनसजनतम पर काम किया। उदाहरण के लिये विदुषी गंगूबाई हंगल, पार्श्व गायक स्व. मुकेश और ग़जल गायक स्व. जगजीत सिंह की आवाजें– सामान्य विचारधारा के अनुसार बहुत अच्छी नहीं मानी जाती थी। लेकिन, इन तीनों ही गायकों ने अपने गले के गुणधर्म को समझा और संगीत की दुनिया में अपना अद्वितीय स्थान बनाया।

यहां मैं बड़े ही आदर के साथ उस्ताद बड़े गुलाम अली खां साहब और प्रोफेसर बी. आर. देवधर को याद करना चाहता हूं। प्रो. देवधर ने वॉयस कल्चर पर अनुसंधान कार्य किया था। एक महफिल में खां साहब के प्रभावशाली गायन के बाद जब खाने–पीने का दौर शुरु होनेवाला था, तो खां साहब देवधरजी से उनके अनुसंधान कार्य के विषय में पूछने लगे। देवधरजी ने बताया कि उनका अनुसंधान कार्य आवाज पर है। जैसे आवाज कहां से निकलती है? किस नस को दबा देने से आवाज नहीं निकलेगी आदि। खां साहब के कहने पर उन्होंने गले की उस नस पर चम्मच रखकर बताया कि इस नस को दबा देने पर आदमी बोल नहीं पायेगा। इस पर खां साहब ने उनसे उस नस को जोर से दबाने के लिये कहा। जब देवधरजी ने उस नस को दबाया तो उस्ताद बड़े गुलाम अली खां ने तीन सप्तक की सपाट की एक तान ली और मुस्कुराकर देवधरजी की ओर देखने लगे। प्रो. बी. आर. देवधर खां साहब को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हुए बोले– 'उस्ताद..... मेरा अनुसंधान कार्य इंसानों के लिये है। लेकिन, आप तो फरिश्ते हैं.... ।'

माईक्रोफोन और रेडियो आदि के आविष्कार ने भी गायकों वादकों को अपनी और अपने वाद्य यंत्रों की आवाज को ध्वनि विस्तारक यंत्रों के अनुरुप बनाने और बदलने के लिये प्रेरित किया। जिन लोगों ने इस दिशा में अनुसंधान कार्य किया वे तो टिक गये, नहीं तो बाकी लोग हासिये पर धकेल दिये गये.... नकार दिये गये..... ।

एक और बहुत पुरानी घटना याद आ रही है। एक स्टेज प्रोग्रम में लता मंगेशकरजी और श्री नितिन मुकेश गा रहे थे। दोनों मंच के दो छोर पर खड़े थे। अचानक लताजी अपनी पंक्ति गाने के बाद नितिन मुकेश के पास आईं, माईक्रोफोन को थोड़ा घुमाया और नितिन मुकेश के खड़े होने की दिशा भी थोड़ी सी बदलते हुए उन्हें माईकोफोन के कुछ और समीप जाने का संकेत किया। यह ज्ञान वर्षों के मंचीय अनुभवों से प्राप्त होता है। अनुसंधान सम्मत ज्ञान कहीं भी मिल सकता है। जरुरी नहीं कि उसे लाईब्रेरी की मोटी–मोटी किताबों में ही ढूंढ़ा जाये। इन एक–एक साजों, उनके कलाकारों और उनके अनुसंधानात्मक कार्यों पर एक–एक किताबें लिखि जा सकती हैं।

यहीं एक महत्वपूर्ण बात और है। जहां अनुसंधान की प्रक्रिया गातिमान नहीं रही, वहां–विकास की प्रक्रिया रुक भी गई। आज इसराज, दिलरुबा, नक्कारा और ढ़ोलक आदि जैसे कई साज लुप्त होने के कगार पर खड़े हैं।

अनुसंधान या खोज अथवा शोध की बातें करते हुए हमें यह भी याद रखना चाहिये कि यह निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है। और, बदलते समय के साथ इसमें परिवर्तन भी संभव है। यह संभव है कि आज हम जिस बात का प्रतिपादन कर रहें हैं कुछ समय बाद कोई दूसरा अनुसंधानकर्ता उसे गलत साबित करते हुए एक नये तथ्य को उजागर करे... एक नया रहस्योदघाटन करे.... एक नयी जानकारी दे। अतः हमें उसे स्वीकारने के लिये तैयार रहना चाहिये।

मैं जब छोटा था.... विद्यार्थी था... तब.... अपनी उत्तर पुस्तिकाओं में तबले का आविश्कारक सूफी कवि हजरत अमीर खुसरो को बताता था। जबकि, बाद में मैंने स्वंय इस मत का खंडन किया। इसलिये, बदलते समय के साथ तथ्यों में बदलाव कोई बड़ी बात नहीं है। संगीत में– भारु में– लय की सिर्फ दो जातियां मानी जाती थीं– तिस्त्र और चतस्त्र। बाद में इन दोनों जातियों को जोड़कर मिश्र जाति का प्रयोग आरंभ हुआ। फिर, मिश्र जाति को खंडित कर खंड जाति बना और उसके बाद इन सभी को मिलाकर संकीर्ण जाति। इसी तरह रागों में भी भाुद्ध, छायालग और संकीर्ण जाति के रागों का व्यवहार होने लगा है। और, छोटे–मोटे अंतर के साथ प्रचुर मात्रा में नवीन रागों की भी रचना हो रही है।

इन्हीं अनुसंधानों के कारण ही संगीत की ढ़ेर सारी भौलियां विकसित हुईं.... और... स्थानीय वि ोशताओं के आधार पर अलग–अलग घरानों की नींव पड़ी। लोक संगीत की अनेक विधाओं ने पहले उप ाास्त्रीय और फिर भाास्त्रीय संगीत का रुप धारण किया। तकनीकी अनुसंधानों के कारण ही मंदिरों में भक्ति नृत्य के रुप में स्थानीय लोक संस्कृति से प्रभावित– अनेक नृत्य भौलियां प्रचलित थीं जो आज भाास्त्रीय नृत्य के रुप में प्रतिश्ठित हैं। इनके अंतर्गत– कथक, भरतनाट्यम्, ओडि ाी, मणिपुरी, कुचिपुड़ी और सत्रीया आदि सभी नृत्य भौलियों को रखा जा सकता है। जो कभी–सिर्फ अपने मंदिरों के प्रांगण तक सीमित रहा करती थीं... आज– दे ा–विदे ा के मंचों पर प्रतिश्ठित हैं।

थोड़ी बातें कथक नृत्य की भी कर लेते हैं। यह नृत्य भौली मंदिरों में जन्मी और पनपी है। जब संगीतकारों ने हिंदू धर्म और संस्कृति को खतरे में अनुभव किया तो इसके धार्मिक, आध्यात्मिक और पौराणिक आख्यानों को मंदिरों के वि ाल प्रांगणों अथवा खुले स्थानों में संगीत – नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करना भारू किया।

उस काल खंड में धार्मिक, पौराणिक आख्यानों को संगीत– नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करनेवाले लोग ब्राह्मण जाति के ही होते थे। चूंकि ये प्रस्तुतियां अधिकां ातः मंदिरों में, देव प्रतिमाओं के सम्मुख ही होती थीं। अतः वहां तक जाने की अनुमति भी सिर्फ ब्राह्मणों को ही होती थी। इन्हीं ब्राह्मणों को ई वरीय कथाओं का संगीतमय प्रद ान करने के कारण कत्थक कहा गया। ये लोग अपना उपनाम– मिश्र, तिवारी, पांडेय आदि लिखते हैं। बाद में, इसी कत्थक भाब्द जो जाति और कर्म सूचक था– के– आधार पर ही कथक नृत्य का नामकरण हुआ। कहा गया– 'कथा कहे सो कत्थक कहावे– अर्थात् कथा कहने वाले लोग कत्थक जाति के हैं। लेकिन, इसका अर्थ गलत लगाया गया– कि– कथक नृत्य में कथा कही जाती है। नये अनुसंधान कर्मियो को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

इतिहास में प्रथम कथक नर्त्तक के रुप में आमेर के आचार्य वल्लभ का नाम मिलता है जिन्होंने स्वामी हरिदासजी द्वारा संकल्पित रासलीला की नृत्य संरचना की थी। 16वीं भाताब्दी से 21वीं भाताब्दी तक आते–आते कथक नृत्य में बहुत अधिक परिवर्त्तन हो चुका है। पहले इस नृत्य का कोई वस्तु क्रम नहीं था। सभी अपनी–अपनी मर्जी से नाचते थे। किंतु बाद में कथकाचार्यों को लगा कि इससे इस नृत्य में अनु ाासनहीनता बढ़ रही है। इसलिये, इसे अनु ाासन के दायरे में लाया जाना चाहिये.... एक नि ित वस्तु क्रम निर्धारित होना चाहिये.... कि किसके बाद क्या नाचा जाये?

तब कथक नर्त्तकों का हर परिवार घराना कहलाता था। लेकिन, बाद में जयपुर में राश्ट्रीय स्तर पर एक विचार गोश्ठी का आयोजन करके इस पर रोक लगाई गई और सबसे कहा गया कि इस विद्वत परिशद् में सर्वसम्मति से जो भी निर्णय लिये गए हैं, सभी उनका पालन करे। और, फिर भौलीगत भिन्नता के आधार पर लखनऊ, जयपुर और बनारस के जानकी प्रसाद घरानें को मान्यता दी गई। बाद में, बीसवीं भाताब्दी में कथक नृत्य का एक और घराना रायगढ़ भी अस्तित्व में आया।

लेकिन,21वीं भाताब्दी में संगीत और नृत्य भौलियों की घरानागत वि ोशतायें आपस में घुलने–मिलने लगी हैं। बदलते समय में भाायद यह स्वामाविक भी है। लेकिन, इससे घरानागत भाुद्धता तो खतरे में पड़ ही गई है न्! आज भाायद ही कोई कलाकार दावे के साथ यह कहने की स्थिति में हो कि मैं अमुक घरानें का भाुद्ध गायन, वादन या नर्त्तन करता हूं। इसलिये, अनुसंधानकर्ताओं को इस जानकारी केलिए सचेत होना पड़ेगा। अनुसंधान का जीवन के हर क्षेत्र में बहुत महत्व है। लेकिन वि वविद्यालय आदि ने प्रवक्ता और प्राध्यापक आदि की नौकरी के लिये अनुसंधान अर्थात् चीक को अनिवार्य करके इसका न केवल सरलीकरण बल्कि सतहीकरण भी कर दिया है। क्योंकि, न तो भाोध और अनुसंधान के विशय थोक में मिलते हैं, और न तो यह हर किसी के व ा की बात ही है। लेकिन, वि वविद्यालय में पढ़नेवाला हर संगीतार्थी अनुसंधान या पी. एच. डी. करना अब अपने जीवन का परम लक्ष्य समझने लगा है। क्योंकि, इसके अभाव में उसे कोई अच्छी– अर्थात्– अच्छे वेतन वाली नौकरी नहीं मिलने वाली है। इसलिये पिछले बीच–पचीस वर्शों में मेरी निगाहों से भाोध पुस्तक के नाम पर कई सतही पुस्तकें गुजरी हैं चार–पांच किताबों को पढ़कर और चार–पांच संगीतकारों से बातें करके, उनके विचारों के आधार पर एक साधारण सी पुस्तक लिख दी जाती है, और लेखक डॉक्टर बन जाता है। आज के माहौल में भाायद यह ठीक भी है। अगर, हर किसी को अनुसंधान करना है तब तो ऐसे ही होगा न्!

लेकिन, मैं जब अनुसंधान, भाोध या रिसर्च भाब्द के विशय में सोचता हूं, या जब किसी भाोध प्रबंध या ग्रंथ कही जाने वाली पुस्तक को

पढ़ता हूं तो मुझे लगता है कि इसके माध्यम से कोई नया तथ्य, कोई ऐसी नई बात कही जाये– जो इसके पूर्व न कही गई हो, जिससे लोग अभी तक अपरिचित, अनभिज्ञ हो! लेकिन, आज के अधिकां ा भोधकार्यों में यही चीज नदारद मिलती है। वहां सिर्फ दूसरो के विचारों को उद्धृत किया जाता है।

किसी जीवित संगीतकार की काम चलाऊ जीवनी लिख देने, या किसी भाहर, जिले या क्षेत्र वि ोश के कुछ संगीतकारों का जीवन परिचय छाप देने मात्र को व्यक्तिगत रुप से मैं भोध कार्य मानने को तैयार नहीं हूं। हॉलाकि, ऐसे भोध कार्य आजकल धड़ल्ले से हो रहें हैं। कुछ संगीतकारो पर तो पंद्रह–बीस लोगों ने भोधकार्य कर लिया है, भीर्शक में थोड़ा– बहुत फेरबदल करके। चूंकि उन संगीतकार के ि ाश्य लोग कई वि ववविद्यालयों में कार्यरत हैं। अतः वे अपने भोधर्थियों को ऐसे ही विशय सुझा देते हैं। लेकिन, उनकी इस गुरुभक्ति से संगीत का बहुत नुकसान हो रहा है। हॉ! भोधार्थी को जरुर पी. एच. डी. की डिग्री औरफिर कोई अच्छी सी नौकरी मिल जाती है।

मेंरी निगाहों से कम से कम पचास ऐसी पुस्तकें तो गुजरी हीं हैं, जिन पर पी. एच. डी. की डिग्री मिली है, और जिनमें तथ्यात्मक गलतियां हैं। बिडम्बना यह है कि भोधकार्य का ठप्पा लग जाने के कारण लोग उन्हें प्रामाणिक भी मानते हैं। मु ि कल यह भी है कि सहायक प्राध्यापक आदि की नौकरी के लिये पुस्तकों का प्रका ान तो अनिवार्य माना जाता है, लेकिन, उनकी गुणवत्ता और स्तरीयता को नहीं।

दूसरे विशयों के अनुसंधान कार्यों और संगीत संबंधी अनुसंधान कार्यों में एक बहुत बड़ा मूलभूत अंतर है। दूसरे विशयों पर नये अनुसंधानों और प्रामाणिकता के लिये हम गूगल या इंटरनेट पर जाकर सर्च करते हैं। लेकिन, संगीत और नृत्य के क्षेत्र में अपनी बात की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये हमें पीछे की ओर लौटना पड़ता है। आचार्य भरत और भारंगदेव आदि के ग्रंथों के साथ–साथ दत्तिल, कोहल, अभिनव गुप्त, अहोबल और व्यंकटमुखी आदि सहित आचार्य वृहस्पति, डा. भारच्चंद्र श्रीधर परांजपे, डा. उमे ा जो ी, डा. लालमणि मिश्र, डा. प्रेमलता भार्मा, डा. सुभद्रा चौधरी, डा. अरुण कुमार सेन, डा. भात्रुध्न भुक्ल, डा. आबान–ए– मिस्त्री, डा. जयदेव सिंह और डा. योगमाया भुक्ला सहित कुछ अन्य स्वनामधन्य लेखकों की पुस्तकों का सहारा हमे लेना पड़ता है। किंतु ऐसे लेखकों की संख्या बहुत अधिक नहीं है।

मुझे इस बात पर आपति है कि किसी भी विशय का प्रोफसर किसी भी विशय के भोधार्थी का गाइड बन जाता है। अधिकां ा मामलों में ऐसा इसलिये होता है, क्योंकि गाइड का काम सिर्फ हस्ताक्षर करना मात्र होता है। भोश सारे काम भोधार्थियों को खुद ही करने पड़ते हैं। गाइड उन्हें यदा–कदा कुछ सलाह मात्र दे देते हैं। ऐसे भोधार्थियों को अपने भोध निदे ाक के सुझाव पर अक्सर हम जैसे लोगों की मदद लेनी पड़ती है। वे अपनी थीसिस हमे दिखते हैं, और हमसे सलाह तथा सुझाव लेकर उसे सं ोधित करने के बाद जमा करते हैं। लेकिन, अगर गाइड उनेक अपने विशय का वि ोशज्ञ हो तो यह समस्या स्वतः समाप्त हो जाएगी और भोधार्थियों को सही तथा समुचित दि ाा निर्दे ा मिल सकेगा।

भोधकार्यों के प्रका ान के साथ एक बड़ी समस्या भाशा की होती है। भोधार्थी संगीत का विद्यार्थी होता है साहित्यकार या भाशा भास्त्री नहीं। इसलिये अनेक भोधकार्य जब पुस्तक रुप में प्रकि ात होते हैं तो उनकी भाशा नीरस तो होती ही है, कई बार त्रुटि युक्त भी होती है। उसमे प्रवाह और रोचकता न होने के कारण पाठक उसे पढ़ने में रुचि नहीं लेते हैं, और वह भोधकार्य प्रायः पुस्तकालयो तक ही सिमट कर रह जाता है। और, वृहत पाठक वर्ग तक पहुंचने से वंचित रह जाता है। मेरा सुझाव है कि संगीत के भोधार्थी अपने भोधकार्य के लिये जैसे किसी गाइड की मदद लेते हैं, उसी प्रकार उसे प्रकाि ात कराते समय उन्हें किसी लेखक की भी मदद ले लेनी चाहिये– जो उनके द्वारा उद्घाटित तथ्यों को सहज, सरल और प्रवाहमय भाशा में प्रस्तुत कर सके.... भाशायी अ ाुद्धियों को दूर कर सके। भोधार्थी का लक्ष्य सिर्फ पुस्तक का प्रका ानही नहीं उसका अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचना भी होना चाहिये।

संगीत– नृत्य पर भोधकार्य करनेवालों से मेरा भी लगातार पाला पड़ता रहता है। ऐसे अनेक लोग अलग–अलग सिलसिले में मुझसे मिलते रहते हैं। मेरा अनुभव है कि वे अपने कार्य के प्रति उतने गंभीर नहीं होते हैं, जितना डिग्री के प्रति। उनकी कोि ा ा प्रायः यही होती है कि येनकेन प्रकारेण यह कार्य पूरा हो जाये और उन्हें डिग्री मिल जाये। कई तो स्पश्ट रुप से कह भी देते हैं कि मेरे लिये अधिक परिश्रम करना संभव नहीं है। आप तो कोई ऐसा विशय बता दीजिये, जिससे संबंधित सामग्री अपनी लाईब्रेरी में ही मिल जाये। कुछ विद्वानों का इंटरव्यू करना अगर बहुत जरुरी होता है तो रस्म–अदायगी के तौर पर फोन पर ही जल्दी–जल्दी बातें कर लेते हैं। लेकिन, ये भाुभ लक्षण नहीं हैं। किंतु, यह जरुर भाुभ लक्षण है कि भोध कार्यों में चल रही इन गलत क्रियाकलापों के प्रति यू. जी. सी. अब सतर्क हो चुका है। वि ववविद्यालयों को भी दि ाा–निर्दे ा जारी किये गये है। नकल पकड़ने वाले साफ्टवेयर भी आ गए हैं।

मैं हमे ाा कहता हूं कि हमारा काम हमें मरने के बाद भी ज़िदा रखता है। हमारे लिखे हुए सार्थक अक्षरों का कभी भी क्षरण नहीं होता हैं। लेकिन, भार्त यही है कि उनमें सार्थकता होनी चाहिये। अगर आप सिर्फ अपनी सुविधा, डिग्री और नौकरी आदि को भूलकर– इस उद्दे य के साथ भोधकार्य करें कि उससे संगीत समाज का क्या भला हो सकता है, संगीत की आनेवाली पीढ़ियों को क्या और कितना मार्गद ान मिल पायेगा। तो, नि चय ही आपका कार्य संगीतोन्मुखी होगा... सत्यम् ि ावम् और सुंदरम् के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होगा... और... आपकी य ा प्राप्ति में भी। आपकी दृश्टि जितनी दूर तक जा पायेगी... आपकी य ा कीर्ति भी उतनी दूर तक जायेगी। इसीलिये, अपनी आंखे खोलिये... वि ााल दृश्टि के साथ वि ााल हृदय का भी परिचय दीजिये.....